

अनुत्तरण

—नचिकेता

हमर ठीक सामने राखल ऐना मे पूर्णरूपे 'हम' बनि कऽ जे रोज बैसल रहैछ हमर सामने, जकर नाम थिक अजय, ओ पारदर्शी पानपात्र क उन्मुक्त नग्नता क अभ्यन्तर सँ एकवेरि आङुर पैसोलक आ' बुझल नशा जमल अछि। तकरबाद ओहि प्रमत्त आङुरक आँखि देखतहि रहि जाइछ निस्पन्द भ' कए। आङुर देखैत अछि—पानपात्रक प्रात्यहिक पारदर्शिता, देखैछ पान पात्र क कंठ तर पड़ल रंगीन शराबक लोभी आँखि चुम्बन केर प्रतीक्षा क' रहल अछि तीव्र तृषा ल' कए। तृषा' हँ अजय केँ मोन पड़ल ओकर स्त्री क नाम। आ मोन पड़तहि जेना ओ ऐना मे अपना केँ मुँह दूमि कए कहि उठल, 'ऐ अजय' तृषा तोहर स्त्री थिकीह अथवा स्त्री क नाम ?' मोने मोन अजय जबाब देल, 'नहि जनैत छी; भरि जिनगी तँ तृषा-नाम क हिज्जय पर हाथ फेरिते बीति गेल।' ई सुनि पानशालाक सभ ऐना मधुर निष्ठुर शब्दे हँसि देलक। अजय ओहि शब्दक चित्कार सुनि चारूकात देखलक क्यो ई शब्द सुनि त नहि लेलक, ओकरा दुश्चिन्ता भेलैक। चारूकात मुँह फेरि ओ निश्चिन्त भेल, नहि। निश्चिन्त होइनहि ओकरा फेरो वैह नाम मोन पड़ल—तृषा, तृष्णा, तृषित। हँ, एहि मुहुर्त मे सब क्यो तृषित अछि, चारूकात क मातल ठोर क भीड़ तृषित अछि, कियैक त ओहिसभ क प्रचुर तृष्णा बुझल अछि। अजय तृषित अछि, कारण ओ 'तृषा' शब्द क जीवन भरि उपभोग केने छैक।

और तृषा स्वयमो तृषित छैक, जकर कारण क खोज मे बहिराए क सब क्यो कलान्त, रौद्राक्त भ' गेल छथि। कारण सबकेँ आव एहि बातक पता चलि गेल अछि जे स्वयम् तृष्णा अपन कारण-कस्तुरीक कामना मे उदग्र,

उग्रतर भ' उठैत अछि । तें मात्र एतबहिटा अजय आ' तृषा जनैत छथि जे तृषा चाहैत छलीह ककरहु पर विजय प्राप्त कर' आ' अजय चाहैत छल जे ओकर समस्त तृषा क तृप्ति घटय ।

दुनू गोटा मे सँ क्यो से नहि पाओल, जे ओ सब चाहने छल । तें, दुनू गोटा क मध्य फाटल नुआ सी रहल छल एकटा तात्क्षणिक सहा-वस्थान क सूत, यद्यपि दुनू गोटे जनैत छल, एहि क्षणिकता क दैर्घ्य एकटा सम्पूर्ण जिनगी सँ कम नहि । दुनू इहो जनैत छल जे दुनू क एके संग रह' पड़ि रहल अछि आ' रह' पड़त । और यह आवृत्ति क कोखहि मे जन्म लैत अछि एकटा, शिशु जकर मात्र एकहिटा नाम भ सकैछ आ' ओ अछि 'स्वाभिवक्ता' । 'कियैक त, अप्राप्तिक घर्षण सँ अजय क एकटा पैर पंगु भ गेल अछि आ' वैह क्षयशीलता प्रतीक्षिता तृषा क मोन क ताख पर जमा कैलक अछि मेद क स्थूलता ।

अतएव, प्रतिदैनिक आवृत्ति क हाथें जिनगीक दिन सब कें समर्पित कए अजय अपन पंगुता क संग सोचैत छल गंगा क बन्हाओल घाट क पीठ पर क्रैच कें राखि । किछु दूर क एकटा पत्थरक एकटा चुबुतरा पर बैसि तृषाओ सोचैत छलीह तरंग सभक संग । सोचैत सोचैत चिन्तित तरंग सभ गर्भस्थ बालु-माटि कें धकिया धकिया कए ल' अबैत छल अजय क पैरक तर । आ अहिना अजयक पैर क तर रोज एकटा जटिल पर्वत निन्न तोड़ि जागि उठैत छल । ओहि पहाड़ क कन्हा चौरंगीक उच्चतम सौध क उड़ैत केश क प्रान्त भागहु सँ ऊपर चुपचोप ठाढ़ रहैत छल । आ' गंगा क ओहि पार क बाकी तरंग सब तरेगणक सङ पड़यन्त्र कए अपन अपन तनुलता सफेन वन्या सँ स्नान करा कऽ फूलक विपुलता सँ सजवैत छल, जे देखि तीरभूमि क छोट बड़ महल सभक छातीक मध्य जगैत छल सकाम उल्लास क कल्लोल, एकटा अतिरपित तृषा । और वैह कल्लोल क कुहकजाल मे ओझरा कए विस्तृत बालुका राशि बनि जाइत छल हमरहि हृदय जकाँ विस्तृत आ' शून्य । तृषाक स्तनक जङ्गल मे सँ कहियो भाँकि कए ओकर हृदय कें हम नहि देखलहुँ ।

तैइयो दुनू गोटे चलि जाइत छलहुँ ओहि पार, नदी पार भ' कए सैकत पर। तीरभूमि पर ठाढ़ भए देखैत छलहुँ छोड़ि आयल पहाड़ सभ क दिसि, कि तखनहि पहाड़ सभ क क्लान्त आ' निरासन्न दृष्टिपात निराश करैत छल हमरा सब केँ। हमरा सब केँ क्षिन्न होइत देखि एकटा जिज्ञासु हवाक लहर दुनू क बीच घुमैत फिरैत छल रातुक तरेगण निबिष्टचित्त ओकरा सभक निजी पंद्धति मे हमर पडु पेर सँ तृषा क जानु क दुरत्व नापैत छल। ओहि सैकत पर तखन हम एक गोटे निष्फल पुरुष, मूरी गौति कैंच क कलम सँ बालु पर किछु लिखैत छलहुँ। और बसात बार बार ओहि रेखा केँ मेटा दैत छल। ओ तखन आन दिस आँखि बिछा कए अपन काम्य पुरुष केँ खोजैत छलीह, जे ओकरा गछने छल जे ओ एक दिन आओत, यद्यपि, लेहित-देह क खोज मे ओ नहि औताह, ई सब तृषा जनैत छलीह, हमहुँ जनैत छलहुँ, तथापि।

हमर दृष्टिओ एहन सब समय मे अन्यमनस्क भऽ देखैत छल पहाड़ क दिसि, पहाड़ क गाछ विरीछ क दिसि। कखनहु नदी क देह क ऐना मे कोनो परिचित मुख क फाटल छवि टांगल रहैत छल। ओहि पारक पहाड़ सब अतिवृद्ध पृथ्वीक विवर्ण कुव्वर बनि जाइत छल। नहि जानि कियैक लगैत छल, हमरहि जकाँ ई पृथ्वीयो दौड़ल चलल जाइत अछि आ' जाइत जाइत पथ मे कतहु सूर्य केँ हेरा दैत अछि। तखनहि हम तृषा केँ कनैत देखैत छलहुँ। तृषा कनैत छलीह आ' सैकत बालुसभ काँपि उठैत छल ओहि निःशब्द चित्कार सँ। हम तखन प्रात्यहिक अभ्यासानुसार मोने-मोन आवृत्ति करैत छलहुँ, 'तृषा' हमर स्त्री ! अहाँ जिनका चाहैत छी ओ औताह, ओ आवि गेल छथि; देखैत नहि छी, पहाड़क स्तन पर हुनकर समर्थ दाँतक चेन्ह' और वोहो जेना नवीना प्रेयसी जकाँ भौ नचा कए पुछैत छलीह, 'सत्ये ?'

हमसभ प्रतीक्षा प्रतीक्षा मे पैदल चलैत रहलहुँ। चलैत चलैत पहुँचैत छलहुँ पलाशवन क आङ्गन मे, जतय सब किछु छल लाल, कामना क अस्थिर उत्तेजना मे रक्ताभ छल सभ क गाल। बिसरि जाइत छलहुँ

ओहि अस्थिरता क जीवन मात्र एकहि राति । ई भुला दैत छल कुश क वन क बीच एकटा चिरस्थिर देवदारु क उठायल आङ्गुर । ओतहुका उगल जंगली घास पात और लतासब हमरा दुनू केँ कोनो अदृश्य बन्धन मे बान्हि लैत छल आ' हवा क झोंका फिसफिसा केँ कहैत छल, 'नहि नहि नहि जाय देव-नहि ।' ई सभ देखि एकटा बांझ नारी क तृष्णा जकर नाम थीक तृषा, सोचैत छलीह—ओकर पुरुष अवश्य आओत । चारूकात क गाछो—बिरीछ सभ जेना सान्त्वना दैत छल—ओ आओत, ओ आओत, देखि लेब, ओ अवश्य आओत ।

हमरा सभ क पत्थर क चबुतरा क चारूकात छिड़िआयल रहैत छल ज्योत्स्नास्नात बनस्थली, प्रकृतिरानी क छोट छोट गहना जकाँ । कोनो अनजानल चिड़िया क डेन क झटपटाहटक अढ़ सँ क्यों जेना खबरि करैत छल—ओ आबि रहल छथि । आर संगे संग पार्श्वप्रकृति चंचल भ' उठैत छल, शुरू भ' जाइत छल हर पात मे खसखसाहट, आ' प्रकृति क कल्पना । बुझाइत छल, जेना सब क्यों अतिम बेरि क लेल सजि लैत अछि ! तकर बाद प्रतीक्षा क स्तब्धता निःशब्द रहैत छल आशा मे । नहि जानि कखन उतरि आयत दयित आकाश नक्षत्र खचित वासन्ती वस्त्र मे । तृषा तखन नक्षत्र गनैत रहैत छलीह । आ' अपना दिसि देखतहि लगैत छल जेना हम सुन्दर भ' गेल छी—हम सुन्दर, हमर पैर सुन्दर ; तृषा सुन्दर, तृषा क प्रेमिक सुन्दर । हम जकरहि दिसि देखैत छलहुँ, सैह सुन्दर भ' जाइत छल । ओहि सौन्दर्य क स्रोत मे बहि कए चलि जाइत छलहुँ कत्तेक नगर-बन्दर पार क' कए एहन देश मे, जतय लोभ नहि, दुःख नहि, क्षोभ नहि, राति नहि, नहि कोनो राति क यंत्रणा । ओतय जौ किछु छल न मात्र आनन्द—आनन्दलोक । ओहि नि सीम आनन्द केँ हम चाटैत रहैत चलहुँ तृपित जकाँ आ' कि तखनहि ।

तखनहि काग क कर्कश क्रन्दन सँ प्रात्यहिक सपना टूटि जाइत छल, टूटैत छल सूर्याश्व क खूर क शाब्दिक आघात सँ । आ' अजय-तृषा देखैत छल—पछिलका राति क मातल वसात, देवदारु, कुश आ'

पलाशवन पड़ा गेल छल चुप्पे-चाप । तृषा क आखि मे ओहि सभ समय जमल जलरेखा अविकृत पड़ल रहैत छल । तकर बाद अजय उठि कए ठाढ़ होइत छल, हँसबाक व्यर्थ चेष्टा करैत कहैत छल, 'देखि लेब, ओ काल्हि अवश्य औताह ।' और आइयो ओ नियमपूर्वक वैह बातक आवृत्ति कैलक, यद्यपि दोसर पत्थर क चबुतरा आइ पहिलका बेरिकलेल शून्य छल ।

कारण, तृषा केँ आइ हम, उर्फ अजय चौहन, बहुत यत्न ल' कए गर दाबि कए अपन वेडरूम क अलमारी मे मोटका ताला क अड़ मे नुकाय आयल छी ।

अरुणक उद्घोष

श्री लूटन ठाकुर 'लालत'

जे अहाँ चाहै छी

से भ जयतइ ।

आ जे हम चाहत छी

से नइ हैतइ !

के कहलक ई बात ?

हम किन्नहु नहि पतिआयब

हम किन्नहु नहि घोखा खायब

की चाहइत छी हम

से बूझल अछि हमरा,

से किन्नहु नहि असंभव

बजाउ, बजायब जकरा,

विश्व स्तर पर